International Journal of Multidisciplinary Research and Development

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

IJMRD 2015; 2(1): 481-483
www.allsubjectjournal.com
Received: 15-12-2014
Accepted: 27-01-2015
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact factor: 3.762

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग के0ए0 (पीजी) कॉलेज कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग के0ए0 (पीजी) कॉलेज कासगंज (उ0प्र0)

'प्रत्ययः' सूत्र की व्याख्या में प्रतिबिम्बित शिवरामेन्द्र सरस्वती के विचार

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

शोध सारांश
शिवरामेन्द्र सरस्वती (17वीं शदी) ने महाभाष्य पर 'सिद्धान्तरत्नप्रकाश' नामक टीका लिखी है। उनसे पूर्व कैय्यटकृत 'प्रदीप' टीका महाभाष्य के भावबोध का एकमेव अवलम्बन थी। इस शोध पत्र के माध्यम से 'प्रत्ययः' (पा०–3–1–1) सूत्र पर महाभाष्यकार के विचार के आलोक में प्रदीपकार की व्याख्या का शिवरामेन्द्र सरस्वती ने किन हेतुओं के द्वारा खण्डन किया है? तथा अपने किन मौलिक विचारों की प्रस्तावना की है? इसका सूक्ष्मता से अवलोकन करने का प्रयास किया गया है। शोध के परिणामस्वरूप यह विदित होता है कि शिवरामेन्द्र सरस्वती के द्वारा प्रदीप का खण्डन अतात्विक है तथा पाण्डित्यप्रर्दशन की लालसामात्र है।

पतञ्जलिकृत महाभाष्य पर शिवरामेन्द्र सरस्वती ने 'सिद्धान्तरत्नप्रकाश' नामक टीका लिखी है। यह टीका चतुर्थ अध्याय पर्यन्त 'फ्रांसिस इण्डोलॉजि इंस्टीट्यूट, पाण्डिचेरी' से 'महाभाष्यव्याख्यानानि' के नाम से प्रकाशित हुयी है।

शिवरामेन्द्र सरस्वती के पूर्व कैय्यटकृत 'प्रदीप' टीका महाभाष्य के गूढ़ भावों को उद्घाटित करने का एकमात्र अवलम्बन थी। कैय्यट ने भर्तृहरि के वाक्यपदीयम् को अपनी व्याख्या का आधारस्तम्भ स्वीकार करते हुये लिखा है––

> तथापि हरिबद्धेन सारेण ग्रन्थसेतुना।
> क्रममाणः शनैः पारं तस्य प्राप्तास्मि पंगुवत् ।। प्रदीप मंगल श्लोक–7

शिवरामेन्द्र सरस्वती अपनी व्याख्या के द्वारा कैय्यटकृत प्रदीप का पदे–पदे खण्डन करते हैं साथ ही प्रसंगक्रम में उद्धृत भर्तृहरि की कारिकाओं के खण्डन करने में भी वे नहीं हिचकते हैं।

इस शोध पत्र के माध्यम से 'प्रत्ययः' (पा०–3–1–1) सूत्र पर महाभाष्यकार के विचार के आलोक में प्रदीपकार की व्याख्या का शिवरामेन्द्र सरस्वती ने किन हेतुओं के द्वारा खण्डन किया है? तथा अपने किन मौलिक विचारों की प्रस्तावना की है? इसका सूक्ष्मता से अवलोकन करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रत्ययः' सूत्र पर विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है। अतः इस पत्र को "निमित्तस्य निमित्तिकार्यार्थतत्वादन्यत्रापि" (महा०–3–1–1, वा०–2) की व्याख्या पर केन्द्रित किया गया है।

अधिकाररूप से आचार्य पाणिनि ने प्रत्ययसंज्ञा का विधान किया है। इस संज्ञाविधि में संज्ञी का स्पष्टतः अनुल्लेख होने के कारण 'प्रकृति उपपद' व 'उपाधि' में भी प्रत्ययसंज्ञा की अति प्रसक्ति होती है। जिसका वारण करना आवश्यक है।[1] किन्तु यहाँ महाभाष्यकार ने इस प्रतिषेध–विधान को अनावश्यक मानते हुये प्रस्तुत वार्त्तिक के द्वारा अधोलिखित समाधान प्रस्तुत किया है।

यतोहि 'निमित्त' सदैव 'निमित्ति' के कार्यसाधक होते हैं। अतः उक्त प्रतिषेध प्रकृत में प्रकृत्यादि निमित्त है तथा सनादि प्रत्यय निमित्ति। इस दशा में प्रकृत्यादि निमित्ति होने के कारण सनादि की विधि एवं प्रत्ययसंज्ञा करने में उपकारक होंगे न कि स्वयं की प्रत्ययसंज्ञा के प्रयोजक। धातुप्रातिपदिकोपदेश के द्वारा पूर्व में ही निर्ज्ञातार्थ होने के कारण प्रकृत्यादि निमित्त हैं जबकि प्रथमोपदिष्ट होने के हेतु से प्रत्यय अनिर्ज्ञातार्थक हैं, अतः वे निमित्ती हैं।[2]

कैयट ने प्रस्तुत प्रस में नवीन दृष्टान्त एवं ऊहा का प्रयोग कर भाष्यकार के आशय को अधोलिखित रूप में सुबोध बनाया है––

प्रकृति, उपपद एवं उपाधि का विधान भूतविभक्ति द्वारा किया गया है अतः निमित्तभाव से शब्दशास्त्र में उनका ग्रहण होता है। निमित्त परार्थ के साधक होते हैं न कि प्रत्ययसंज्ञा आदि स्वसंस्कार के प्रयोजक अतएव उनकी प्रत्ययसंज्ञा नहीं होती है।[3]

[1] सा प्रकृत्युपपदोपाधीनामपि प्राप्नोति तस्याः प्रतिषेधो वक्तव्यः। महा0–3.1.1।

[2] निर्ज्ञातोऽर्थो निमित्तमनिर्ज्ञातोऽर्थो निमित्ती। इह च प्रत्ययोऽनिर्ज्ञातः, प्रकृत्युपपदोपाधयो निर्ज्ञाताः। महा0–3.1.1 वा0–2।

[3] प्रकृत्यादीनां भूतविभक्त्या निर्देशात्सनाद्युत्पत्तौ निमित्तभावेनोपादानात्पारार्थ्यात्स्वसंस्कारं प्रति प्रयोजकत्वाऽभावादित्यर्थः। प्रदीप–3.1.1., वा0–2।

कैयट से पूर्व जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' में प्रकृतविषय के व्याख्याक्रम में पचम्यादि विभक्तिओं को भूतविभक्ति कहते हुये उनसे निर्दिष्ट प्रकृत्यादि की संज्ञा–संज्ञीसम्बन्धरूप अयोग्यता का वर्णन किया है।[4] अन्नंभट्ट ने प्रदीपोद्योतन में भूतविभक्ति और उसके अर्थ को सुस्पष्ट किया है कि सप्तमी, पचमी आदि विभक्तियाँ भूतविभक्ति होती है जो कि सिद्धार्थ (= निर्ज्ञातार्थ) की बोधक होती है।[5] प्रदीपोद्योतकार नागेशभट्ट ने 'भूतविभक्त्या' का अर्थानुवाद 'सिद्धत्वबोधकविभक्त्या' किया है।

अधिकारविधि से प्रत्ययसंज्ञा करने के कारण प्रत्ययविधिसूत्र समानरूप से दो कार्य सम्पादित करते हैं। 1–प्रत्ययविधि 2–प्रत्ययसंज्ञा। ऐसी दशा में दोनों अर्थों के सम्यक् अवबोध के लिए वाक्यभेद करना आवश्यक होगा। यथा– गुप्तिज्किद्भ्यः सन् (पा0–3–1–5)। का प्रत्ययविध्यर्थक वाक्य 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन् विधीयते' तथा प्रत्ययसंज्ञार्थक वाक्य 'गुप्तिज्किद्भ्यो विहितः सन् प्रत्ययसंज्ञकः भवति' इस प्रकार उभयविध होंगे। वाक्यभेद की इस प्रक्रिया में प्रकृत्यादि में संज्ञानुकूल विभक्तिविपरिणाम नहीं किया जा सकता, प्रमाणाभाव एवं 'सन्' के रूप में सावकाश होने के कारण। इसके उपरान्त भी प्रत्ययसंज्ञा का सम्बन्ध सनादि के साथ ही समीचीन होगा क्योंकि वह निमित्ति के रूप में विहित है।[6]

पाणिनि ने अपने शास्त्र में संज्ञा–संज्ञी का विधान किया है, 1. अभेद–विवक्षा में प्रथमा द्वारा यथा– वृद्धिरादैच् (पा0–1–1–1) तथा 2. भेदविवक्षासम्बन्ध में षष्ठीविभक्ति के द्वारा यथा–इग्यणः सम्प्रसारणम् (पा0–1–1–45) आदि में। सनादि संज्ञियों का विधान अभेदसंज्ञासम्बन्ध के योग्य प्रथमाविभक्ति के द्वारा किया है। अतः वे ही प्रत्ययसंज्ञा के लिए उपयुक्त हैं प्रकृति, उपपदादि नहीं।[7]

प्रकृत्यादि के प्रत्ययसंज्ञा अभाव को सिद्ध करने के लिए कैयट ने एक नूतन तर्क दृष्टान्तसहित प्रस्तुत किया है, कि सम्बन्ध सदैव दो परस्पर आकाङ्क्षावान सम्बन्धियों में ही सम्भव है। निराकाङ्क्ष या अन्यतराकाङ्क्ष में सम्बन्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। अन्यतराकाङ्क्ष की दशा में सम्बन्ध के अभाव के लिए प्रसिद्ध सीता–रावण के दृष्टान्त को लिया जा सकता है। जिसमें रावण की आकाङ्क्षा एवं सीता की अनाकाङ्क्षा सर्वविदित है। यह दृष्टान्त प्रकृत में परामर्शयोग्य है।

प्रत्ययविधि में प्रकृत्यादि की आकाङ्क्षा निमित्तभाव से कार्य करके उपक्षीण हो गयी। प्रत्यय संज्ञा की आकाङ्क्षा विद्यमान होने पर भी प्रकृत्यादि, सनादि प्रत्ययों के विशेषण, के रूप से अन्वित होते हैं, जिस कारण उनमें अनाकाङ्क्षा होने से दोनों में संज्ञा–संज्ञीरूप सम्बन्ध अकल्पनीय है।[8] सनादि संज्ञियों एवं प्रत्ययसंज्ञा में परस्पराकाङ्क्षा तथा संज्ञा–संज्ञीसम्बन्ध के अनुकूल विभक्ति होने के कारण दोनों के उक्त सम्बन्ध में कोई बाधा नहीं है।

अत्यन्त स्पष्ट होते हुये भी कैयट का यह मत शिवरामेन्द्र को स्वीकार्य नहीं है, वे इसका निरसन करते हुये निमित्त–निमित्ति के प्रसंग में प्रस्तुत प्रथम ऊहा को अनुचित बताते[9] हुये कहते हैं कि भूतविभक्ति यह हेतु प्रकृत्यादि के निमित्तत्व–सिद्धि में असमर्थ है। अपने पक्ष की परिपुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं––

'भूतविभक्ति' में प्रयुक्त 'भूत' पद का अर्थ कालसापेक्ष करते हुये शिवरामेन्द्र ने अपने तर्क में कहा है कि सातों विभक्तियों का सम्बन्ध भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल से सम्भव होने के कारण तथा भाष्यकार के द्वारा अपने ग्रन्थ में प्रकारान्तर से तीनों ही कालों में निमित्त को उपपादित किया जायेगा इस कारण वर्त्तमान एवं भविष्य को छोड़कर केवल भूतविभक्ति के आधार पर निमित्तत्व–सिद्ध करना अनुचित है।[10]

व्याकरणशास्त्र में यदि प्रथमा को निमित्तिविभक्ति तथा शेष विभक्तियों को निमित्त या भूतविभक्ति के रूप में ग्रहण किया जाये तो यह नियम भी सर्वथा अपवादरहित नहीं है, क्योंकि आचार्य पाणिनि ने 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः'[11] 'स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा'[12] 'इग्यणः सम्प्रसारणम्'[13] इत्यादि सूत्रों में षष्ठी विभक्ति के द्वारा निमित्ति का विधान किया है।[14] ऐसी दशा में निमित्त एवं निमित्ति के लिए शास्त्र में निश्चितविभक्ति का नियमन एवं उसके आधार भूतविभक्ति इस अभिधान का प्रयोग कितना उचित है यह विचारणीय है।

लोक में निमित्त एवं निमित्ति के लिए नियतविभक्तिविषयक नियम नहीं है क्योंकि वहाँ सातों विभक्तियों के द्वारा निमित्ति के वर्णन के उदाहरण सुलभ हैं।[15] जैसे– 'कतरो देवदत्तः' यह प्रश्न पूछने पर – यः पीठे, यं पश्यसि, येन दृश्यसे, यंस्मात् स्रस्तं वस्त्रं इत्यादि।

परस्पर आकाङ्क्षावान् में ही सम्बन्ध सम्भव है कैयट के इस तर्क व सीता–रावण के दृष्टान्त का शिवरामेन्द्र सरस्वती ने यह कहते हुये खण्डन किया है[16] कि शब्द अचेतन विषय है जबकि आकङ्क्षा–अनाकाङ्क्षा के लिए प्रस्तुत सीमा–रावण का दृष्टान्त चेतनविषयक है अतः चेतनदृष्टान्त के द्वारा अचेतन की आकाङ्क्षा–अनाकाङ्क्षा को सिद्ध नहीं किया जा सकता है।[17]

प्रकृत प्रस में कैयट भाष्यकार के विचार की व्याख्या एवं उसको पुष्ट करने वाले नूतन विचार प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। इस क्रम में उन्होंने 'भूतविभक्ति' हेतु का प्रयोग 'निमित्तत्व' को सिद्ध करने के लिए किया है, जिसका प्रयोग उनके पूर्ववर्त्ती काशिकावृत्ति पर 'न्यास' नामक टीका के प्रणेता जिनेन्द्रबुद्धि ने भी समान प्रसंग में किया है। कैयट को 'भूत' शब्द से कालवाचक अर्थ अभीष्ट नहीं है अपितु 'सिद्ध–अर्थ' या ज्ञात अर्थ ही अभिप्रेत है जैसा कि उनके पश्चाद्वर्त्ती अन्नंभट्ट, नागेश आदि ने स्पष्ट किया है।

अन्यतर की आकाङ्क्षा में सम्बन्ध का अभाव होता है, यह कैयट का प्रस्तुत प्रसंग में नूतन हेतु है तथा इसमें प्रयुक्त 'सीता रावणयोरिवेति' यह दृष्टान्त लोकप्रसिद्धि के कारण अर्थावबोध में अत्यन्त सहायक है क्योंकि न्यायशास्त्र के अनुसार– जिसकी सहायता से किसी अर्थ के विषय में साधारण लौकिकपुरुष एवं विशेषज्ञ परीक्षकपुरुष को एक सा ज्ञान हो जाये उसे 'दृष्टान्त' कहते हैं।[18]

[4] प्रकृत्युपपदोपाधयस्तावत् परकार्यसिद्धये भूतविभक्त्या प×चम्यादिकया निर्दिश्यन्त इति तेषां प×चम्यादिविभक्त्यन्तं शब्दरूपं संज्ञासंज्ञिसंबंध प्रतिपत्तुमयोग्यम्। काशिका–3.1.1, न्यास।

[5] सप्तमी प×चम्यादेस्तदन्तात् सिद्धार्थप्रतीतेर्भूतविभक्तित्वम्। प्रदीपोद्योतन–3.1.1, वा0–2।

[6] तत्र वाक्यभेदेनाऽपि विधीयमाना प्रत्ययसंज्ञा सनादिभिरेव संबद्धयते, तेषामेव निमित्तित्वात्तां प्रति प्रयोजकत्वात्। प्रदीप–3.1.1, वा0–2।

[7] संज्ञासम्बन्धप्रतिपत्तियोग्यविभक्तिनिर्देशात्। प्रदीप – वही।

[8] एतेन 'प्रकृत्यादीनां भूतविभक्त्या निर्देशात् सनाद्युत्पत्तौ निमित्तभावेनोपादानात् पारार्थ्यात् स्वसंस्कारं प्रति प्रयोजकत्वाभावादित्यर्थः' इति निरस्तम्। प्रकृते तदर्थकत्वाभावात्। रत्नप्रकाश – 3.1.1 वा0 2।

[9] द्वयोश्च परस्पराकाङ्क्षायां सम्बन्धो न त्वन्यतराकाङ्क्षायां सीतारावणयोरिवेति सत्यामपि संज्ञाया आकाङ्क्षायां प्रकृत्यादीनां विशेषणत्वादनाकाङ्क्षत्वात् संज्ञासम्बन्धाऽभाव इत्युक्तं भवति। प्रदीप – वही।

[10] सप्तानामपि विभक्तीनां भूतभविष्यवर्त्तमानसम्बन्धसंभवेन प्रकारान्तरेण भगवता तेषां निमित्तत्वस्योपपादयिष्यमाणत्वेन च भूतविभक्तिनिर्देशेन निमित्ततासाधनानौचित्याच्च। रत्नप्रकाश – 3.1.1 वा0–2।

[11] अष्टाध्यायी – 1.1.69।

[12] अष्टाध्यायी – 1.1.68।

[13] अष्टाध्यायी – 1.1.45।

[14] ननु प्रथमेतरविभक्तिर्भूतविभक्तिः, प्रथमा तु निमित्तिविभक्तिरिति नोक्तदोष इति चेन्न, 'अणुदित्' 'स्वं रूपं', 'इग्यणः' इत्यादावप्रथमाया अपि निमित्तिविभक्तेरस्मित्रेव शास्त्रे दर्शनात्। रत्नप्रकाश – वही।

[15] लोके च कतरो देवदत्त इति पृष्टे यः पीठे, यं पश्यसि, येन दृश्यसे, यस्मायद्य राज्ञा गौर्दत्ता, यस्मात् स्रस्तं वस्त्रं यस्य शिरो वेष्टनमस्ति, यस्मिन् पीताम्बरं तिष्ठति, इति सप्तभिर्विभक्तिभिर्निमित्तिनिदर्शनात्। रत्नप्रकाश – वहीं।

[16] यदप्युक्तम् 'द्वयोश्च परस्पराकाङ्क्षायां सम्बन्धः, न तु अन्यतराकाङ्क्षायां सीतारावणयोरिवेति सत्यामपि संज्ञाया आकाङ्क्षायां प्रकृत्यादीनां विशेषणत्वादनाकाङ्क्षत्वात् संज्ञासम्बन्धाभावः' इति। तदपि न। रत्नप्रकाश – वही।

[17] अचेतनानां चेतनदृष्टान्तेनाकाङ्क्षानाकाङ्क्षोपपादनानौचित्यात्। रत्नप्रकाश – वही।

[18] लौकिकपरीक्षणकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः। न्याय सूत्र – 1.1. 23–25।

शिवरामेन्द्र सरस्वती की गवेषणा भाष्यकार के विचारोद्घाटन से अधिक कैयट के विचारों के खण्डन में केन्द्रित होती प्रतीत होती है। लगता है उन्हें भाष्य के मर्म को उद्घाटित करना उतना अभीष्ट नहीं है जितना कैयट–प्रदीप का खण्डन करना अभीष्ट है। यही कारण है कि वे मत की स्थापना करने में अत्यन्त दुर्बल और परमत खण्डन में अधिक सबल सिद्ध हुए हैं। उनका यह उपक्रम वितण्डा सा प्रतीत होता है, जो कि भाषा के सुकुमार मति 'अधिजिगांसु जनों' को कोई दिशा नहीं देता है। शिवरामेन्द्र सरस्वती ने 'भूतविभक्ति' इस समस्त पद से कैयट के ग्राह्य–अर्थ से पृथक् कालविशेष अर्थ ग्रहण करते हुये उसका खण्डन किया है जो कि उचित प्रतीत नहीं होता है। पाणिनि ने अपने शब्दानुशासन में निमित्ति के लिए प्रायः प्रथमा विभक्ति का विनियोग किया है, अति न्यून स्थल हैं जहाँ पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग करके संज्ञी का निर्देश किया गया है। न्यासकार के अनुसार जहाँ अभेद सम्बन्ध के द्वारा संज्ञा–संज्ञी का वर्णन होता है वहाँ दोनों में समानाधिकरणरूप से प्रथमा का प्रयोग होता है। यथा : वृद्धिरादैच् (पा0 1.1.1)। किन्तु भेदसम्बन्ध की दशा में संज्ञी में षष्ठी का कतिपयस्थलों में प्रयोग किया जाता है– यथा–'स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा' (पा0 1.1.68) इत्यादि।[19] अतः संज्ञी के लिए अतिन्यून स्थलों पर प्रयुक्त षष्ठी के आधार पर निमित्ति के लिए प्रथमाविभक्ति का खण्डन अतात्विक है। जहाँ तक लौकिक प्रयोग में सातों विभक्तियों के द्वारा निमित्ति के वर्णन का प्रश्न है, तो प्रथमा के द्वारा प्रतिपादित निमित्तित्व प्रत्यक्ष है शेष द्वितीयादि विभक्तियाँ गौण रूप से ही निमित्ति का बोध कराती हैं। शब्द अचेतनविषय होते हैं, किन्तु चेतनपुरुष के सानिध्य के कारण उनमें चेतनत्व का समावेश होता है। दृष्टान्त विषय को सुबोध बनाने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, अतः दृष्टान्त के विषय में चेतन अचेतन का नियम नहीं है। अचेतन के लिए चेतन और चेतन के लिए अचेतन दृष्टान्तों का बहुतर प्रयोग किया ही जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः **रू** सम्पादकः श्रीशंकरदेव पाठक, प्रकाशकः गुरूकुल वृन्दावनस्नातकशोधसंस्थानम्, पीतमपुरा, दिल्ली–34 सन्–2000
2. काशिका (न्यास, पदमंजरी सहित) **रू** सम्पादक : डॉ. जयशंकर लाल त्रिपाठी, प्रकाशकः तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी–। 1986
3. न्यायदर्शनम् **रू** प्रकाशक : भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी। सन् 1966
4. महाभाष्यम् **रू** युधिष्ठिर मीमांसककृत हिन्दी व्याख्या, प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत (हरियाणा) द्वितीय संस्करण 1992
5. महाभाष्यम् (भाग 1–5) **रू** आचार्य देवव्रत, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरूकुल, झज्जर, हरियाणा।
6. महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि **रू** सम्पादक– एम0एस0 नरसिंहाचार्य, प्रकाशकः (उद्योतन, सिद्धान्तरत्नप्रकाश व फ्रॉसिस इण्डोलॉजि इन्स्टीट्यूट, पॉण्डिचेरि सन नारायणीयम् सहित) 1973.

[19] प्रथमान्तस्य वा सामानाधिकरण्येन संज्ञासंज्ञिसम्बन्धो भवति यत्र बुद्ध्याहितसंज्ञारूपः सोऽयमित्यभेदसम्बन्धमुपगतः संज्ञी संज्ञया सह निर्दिश्यते, यथा– 'वृद्विरादैच्' इति, षष्ठ्यन्तस्य वा यत्र संज्ञासंज्ञिनोर्भेदविवक्षायां संज्ञाशब्देन स्वरूपपदात्मकेनोपादीयमानेनापजनितव्यतिरेकः षष्ठ्या संज्ञी निर्दिश्यते। काशिका, न्यास–3. 1.1।